जानकारी एवं ज्ञान पदों का प्रयोग आमतौर पर किया जाता है। कई बार इनका प्रयोग एक ही अर्थ में होता है तो कई बार भिन्न अर्थों में। शिक्षा के क्षेत्र में यह सवाल उठता रहा है कि बच्चों को ज्ञान दिया जाए मात्र जानकारी नहीं । तब यह लाजमी हो जाता है कि इनके अर्थ को समझा जाए।

जानकारी किसी तात्कालिक महत्त्व की होती है और परस्पर असंबद्ध होती हैं जबकि ज्ञान में जानकारियों के बीच परस्पर संबंध को देख पाना होता है। जानकारी स्मृति प्रधान होती है जबकि ज्ञान में समझ एवं समीक्षा प्रमुख होती है, जहां कार्य-कारण संबंध का भी बोध हो। इस दृष्टि से ज्ञान के लिए जानकारी अप्रासंगिक नहीं हैं। साथ ही विषय क्षेत्र के अनुरूप ज्ञान की प्रकृति को समझे जाने की आवश्यकता तथा संदर्भ के साथ ही इनके प्रयोग को समझा जाना चाहिए। इस लेख में इन्हीं संदर्भों में इन पदों के अर्थ एवं प्रयोग को समझा गया है।

जानकारी एवं ज्ञान : शिक्षण के संदर्भ में

❑ राजेन्द्र स्वरूप भटनागर

शिक्षा प्रणाली के प्रति अनेक शिकायतों में से एक यह सुनने में आती है कि विषय सामग्री के रूप में शिक्षार्थियों को इन्फरमेशन दी जाती है, नॉलिज नहीं। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग शिकायत के शाब्दिक रूप को उद्धृत करने के निमित्त किया गया है। अनुवाद के रूप में 'इन्फरमेशन' के स्थान पर 'जानकारी' तथा 'नॉलिज' के लिए 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह बहुत स्पष्ट नहीं होता कि इन शब्दों के प्रयोग से क्या आशय लिया जाता है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि बहुधा इन शब्दों को पर्यायवाची रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। 'अमुक बड़ा ज्ञानवान है।', 'अमुक जानकार है', 'वह वैल इन्फॉर्म्ड है' अथवा 'नॉलिजेबल है' जैसे प्रयोग जानकारी तथा ज्ञान के अन्तर को नहीं दर्शाते। तब इस शिकायत का क्या अर्थ हो सकता है कि शिक्षार्थी को जानकारी तो मिलती है, परन्तु ज्ञान नहीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस शिकायत में अनेक प्रकार के असंतोष निहित होते हैं : यथा शिक्षार्थी को अपने विषय की जानकारी तो है, परन्तु वह उससे कुछ सीख नहीं पाया है। यदि पूछें कि क्या नहीं सीख पाया है तब शायद इस प्रकार की बातें सामने आएं : वह जानकारी का उपयोग नहीं कर सकता। उसके जीवन में उसकी जानकारी का कोई प्रभाव नहीं दिखता; जो वह जानता है, उसे वह अन्य तथ्यों एवं आवश्यकताओं के साथ जोड़ नहीं सकता; वह जानता तो है परन्तु उसमें मूल्य चेतना का अभाव है, शिक्षित होते हुए भी उसमें चरित्र का विकास नहीं हुआ है। ये सभी दोष किसी न किसी रूप में 'ज्ञान' शब्द के शिकायती प्रयोग में निहित अर्थों को अभिव्यक्त करते हैं।

वस्तुत: 'ज्ञान' शब्द का, इस प्रकार का प्रयोग अंग्रेजी के 'नॉलिज' शब्द के समकक्ष नहीं बैठता। यदि अंग्रेजी के 'विजडम' को भी साथ में लें तब शायद 'ज्ञान' शब्द की व्यापक अभिव्यंजना के निकट पहुंच सकेंगे। तब शिकायत का रूप हो जाएगा कि शिक्षार्थी को इन्फरमेशन तो मिली परन्तु नॉलिज तथा विजडम नहीं। परन्तु 'नॉलिज' की बात अभी भी स्पष्ट नहीं है। इस प्रसंग में 'नॉलिज' के प्रयोग को शैक्षणिक संदर्भ में देखें।

आगे 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग 'नॉलिज' शब्द के रूप में करेंगे, और वह इस अर्थ में सीमित होगा कि उसमें 'विजडम' की बात का समावेश नहीं होगा। विद्यालयों में सामान्यतया जिस सामग्री का सम्प्रेषण होता है उसे केवल जानकारी कहना उपयुक्त नहीं होगा। परन्तु 'जानकारी' शब्द के प्रयोग से यहां क्या अभिप्रेत है ? यह स्पष्ट करना आवश्यक है । जानकारी किसी भी विषय वस्तु या घटना से संबंधित हो सकती है। 'जैसे भारत की जनसंख्या 100 करोड़ से अधिक है।' 'शरीर का सामान्य तापमान 98.6 डिग्री रहता है' आदि। विशेष जानकारी विशेष प्रश्न के उत्तर के रूप में दी जाती है। इस प्रकार के प्रश्नों के बीच अथवा उनसे संबंधित विषयों के बीच कोई संबंध हो, यह आवश्यक नहीं है । 'क्या रात में कोई गाड़ी दिल्ली जाती है ?' 'जी-हां, दिल्ली रात्रि में 12 बजे एक गाड़ी जाती है।' 'शिमला कितनी ऊंचाई पर है ?' 'लगभग 6 हजार फिट।' .... अब ये दोनों अलग-अलग प्रश्न हैं तथा इनका आपस में कोई निकट का संबंध नहीं है। वस्तुत: प्रथम दृष्टि में तो कोई भी संबंध नहीं दिखता। परन्तु किसी विशेष संदर्भ में वे परस्पर संबंधित हो भी सकते हैं। उस दशा में अनेक अन्य वाक्यों

को इनके साथ जोड़ना पड़ेगा जैसे किसी पर्यटक को गरमी के मौसम में पर्वतों के विषय में जानकारी की आवश्यकता पड़े और वह पर्वत की ऊंचाई के साथ उस तक पहुंचने का कार्यक्रम बनाए तब ये दोनों जानकारियां उसके लिए काम की होंगी और इनका परस्पर संबंध भी होगा। इनके अतिरिक्त उसे और जानकारियों की भी आवश्यकता होगी। उदाहरणार्थ दिल्ली से आगे शिमला में कहां ठहरा जा सकता है, आदि अनेक और बातों को जानना आवश्यक होगा। स्पष्ट है कि बहुधा जानकारी सूचना के रूप में होती है और किसी व्यावहारिक आवश्यकता से संबंधित होती है। इस दृष्टि से उसकी उपयोगिता स्पष्ट है। परन्तु ऐसी जानकारियां भी होती हैं, जो किसी व्यक्ति की जानकारी के विस्तार की ओर इंगित करती हैं तथा कभी-कभी एक क्रीडा कौशल का रूप धारण कर लेती हैं। उदाहरण के लिए जिसे हम 'सामान्य-ज्ञान' की संज्ञा देते हैं तथा विद्यालयों में जो एक विषय के रूप में सम्प्रेषित होता है, वह बहुधा स्पर्धा अथवा प्रतियोगिता का विषय हो जाता है; उसमें ऐसे तथ्यों का समावेश होता है जिनका, जानने वाले के लिए कोई तात्कालिक महत्त्व नहीं होता। जब हम किसी प्रदर्शनी में जाते हैं, तब वहां अनेक प्रकार की जानकारी मिलती है। कुछ काम की होती हैं, तो कुछ केवल जिज्ञासा को शांत करती हैं।

जिस शिकायत को लेकर हम विचार कर रहे हैं वहां शायद ऐसी ही जानकारी की ओर इशारा है, जो तात्कालिक रूप में किसी महत्त्व की नहीं होती। इसी के विरोध में 'ज्ञान' की बात की जाती है। 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग जब हम शैक्षणिक संदर्भ में करते हैं, तब उसका संकेत किसी विशेष विषय के संदर्भ में व्यवस्थित एवं तन्त्रात्मक जानकारी होती है। अर्थात् जानकारी जब संबंधित तन्त्र का रूप लेती है तब वह ज्ञान का रूप लेती है। इस प्रकार जानकारी ज्ञान की दृष्टि से अप्रासंगिक नहीं होती। उसमें किन्हीं आधारभूत सम्प्रत्ययों का समावेश होता है, कुछ मौलिक तथा महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर विचार होता है, इस संदर्भ में अनेक सिद्धांतों या थ्येरियों का निरूपण एवं उनकी समीक्षा होती है, और इन सब के अतिरिक्त, इन सभी पर एक विचार क्रम में, जो एक परम्परा का परिचायक होता है, रखकर विमर्श और विश्लेषण होता है। इस समस्त विषयवस्तु को जानकारी भी कहा जा सकता है। परन्तु यदि जानकारी तथा ज्ञान में भेद अभिप्रेत हो, तब यह कहा जा सकता है कि ज्ञान में विषय के विभिन्न घटकों में तंत्रात्मक व्यवस्था होती है, जो अलग-अलग असंबद्ध जानकारियों में, स्पष्टतया, नहीं होती।

इस बात को एक दृष्टांत से समझें। मान लीजिए हम जानना ('जानना' 'ज्ञान' शब्द का ही प्रचलित रूप है) चाहते हैं कि राज्य क्या है और उसकी उत्पत्ति कैसे हुई ? इन प्रश्नों के विषय में जानने के लिए या तो हमें राजनीति शास्त्र की किसी पुस्तक का पारायण करना होगा या राजनीति शास्त्र के किसी विद्वान से इनके उत्तर के लिए निवेदन करना पड़ेगा। इस संबंध में अनेक बातें बताई जाएंगी और हमें यह भी बताया जाएगा कि वे बातें आपस में कैसे संबद्ध हैं। हमें बताया जाएगा कि इन प्रश्नों के उत्तर के रूप में पहले भी अनेक विचारकों ने विचार किया है। और इसलिए इनके अनेक उत्तर मिलते हैं, जिन्हें, 'सिद्धांत' की संज्ञा दी जाती है। इन सिद्धांतों के आधार में युक्तियां दी गई हैं। देखना यह होता है कि ये युक्तियां कितनी सशक्त हैं तथा इनसे कथित सिद्धांत प्राप्त किए जा सकते हैं या नहीं ? अब इस समस्त विमर्श में राज्य की परिभाषा, राज्य की समाज अथवा मानवों के लिए आवश्यकता, राज्य का आदर्श स्वरूप, इस आदर्श की प्राप्ति की संभावना एवं राज्य तथा संविधान, साथ ही राज्य के अनेक रूप जैसी अवधारणाओं पर विचार का समावेश होता है। स्पष्ट है कि 'राज्य' विषय के अन्वेषण में ये सभी अवधारणाएं तथा उन पर विचार की परम्परा एवं इनसे संबंधित विचारों की समालोचना ये सब परस्पर संबंध रखते हैं। सब मिलाकर एक विचार तंत्र बनाते हैं।

इस संबंध में अनेक जानकारियों की अपेक्षा होती है। उदाहरणार्थ विभिन्न समाजों में राज्य का स्वरूप अलग-अलग किस प्रकार मिलता है ? अतीत में राज्य का क्या रूप रहा है ? राज्य के संदर्भ में मानव की जो भूमिका है उसकी दृष्टि से मानव की प्रकृति के विषय में क्या पता चलता है ? इन प्रश्नों के उत्तर के रूप में इतिहास, समाज शास्त्र एवं मनोविज्ञान से जानकारियां ली जाती हैं, तथा उनका यथा स्थान उपयोग होता है।

एक रोचक तथ्य यह है कि ज्ञान स्वयं अपना अथवा ज्ञान का विषय रहा है। दर्शन शास्त्र तथा मनोविज्ञान में इस बात पर बहुत विचार हुआ है कि ज्ञान अथवा जानना क्या है ? दर्शनशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र, ज्ञान मीमांसा (ऐपिस्टमॉलॉजि) के रूप में जाना जाता है। उसका कार्य इन प्रश्नों पर विचार करना है । अंग्रेजी का 'इन्फरमेशन', जानकारी की इस व्याख्या की तुलना में अधिक विशद रूप में प्रयुक्त होता है। इस संदर्भ में इन्फरमेशन टैकनॉलॉजि (आईटी) का उल्लेख किया जा सकता है। एक अन्य सन्दर्भ 'राइट टू इन्फरमेशन' से निर्धारित होता है। वर्तमान प्रसंग में इन संदर्भों को लेकर चर्चा अनावश्यक होगी। 'ज्ञान' को कैसे परिभाषित करें, कोई कथन सत्य है यह कैसे तय किया जाए, विभिन्न क्षेत्रों के ज्ञान क्या सब एक रूप होते हैं, क्या ज्ञान का ज्ञान संभव है, ऐसे अनेक आधारभूत प्रश्न ज्ञान मीमांसा का विषय माने जाते हैं। स्पष्ट है ज्ञान मीमांसा के इस विस्तृत क्षेत्र में यहां प्रवेश करना न तो आवश्यक है और न ही उसका अवकाश है। परन्तु इस तथ्य की ओर संकेत करना जरूरी है कि, जिन विषयों का अध्ययन अध्यापन विभिन्न

शैक्षणिक संस्थाओं में होता है, उन सब की प्रकृति ज्ञान की दृष्टि से समान नहीं होती।

इस संदर्भ में अधिक सूक्ष्म विश्लेषण में न जाकर ज्ञान के कुछ क्षेत्रों के बीच जो भेद दिखते हैं तथा जो चर्चा का विषय रहे हैं, उनका उल्लेख कर सकते हैं। एक अत्यन्त स्थूल भेद तो मानविकी के विषयों तथा विज्ञान के सिद्धांतों के बीच किया जाता है। ऐसा समझा जाता है कि विज्ञान के अन्तर्गत आने वाले विषयों में ज्ञान की प्रमाणिकता अन्य विषयों के ज्ञान की तुलना में अधिक होती है। कोई समय था जब विज्ञान के विषयों की प्रमाणिकता निरपवाद रूप में सर्वोच्च मानी जाती थी। विशेषकर भौतिकी का ज्ञान अन्य सभी प्रकार के ज्ञान क्षेत्रों के लिए एक मानक का दर्जा रखता था। आइन्स्टाइन के आगमन के पश्चात भौतिकी के स्वरूप में ऐसा परिवर्तन हुआ कि इस क्षेत्र को विशेषित करने वाली निश्चयात्मकता तथा निरपेक्षता पर प्रश्न चिह्न लग गया। कहा जाता है कि देश, काल, गति एवं ऊर्जा आदि के विषय में जो सिद्धांत न्यूटन की भौतिकी में प्राप्त होते थे, उनमें आइन्सटाइन के विचारों के कारण आमूल परिवर्तन हो गया। उदाहरण के रूप में न्यूटन की भौतिकी में देश तथा काल दो अलग वास्तविक सत्ताएं मानी गई थीं। आइन्स्टाइन का मत था कि वे वास्तविकता के चार परस्पर गुंथे हुए आयाम हैं तथा वे अन्ततः गति एवं व्यक्ति की स्थिति पर आधारित हैं।

आण्विकी के क्षेत्र में यह कहा गया कि परमाणु की स्थिति तथा परिमाण एक साथ निश्चित नहीं किए जा सकते। फलतः उनके संबंध में एक अपरिहार्य अनिश्चय की स्थिति उत्पन्न हो गई। इसी बात को 'अनिश्चयात्मकता' के सिद्धांत में प्रतिपादित किया गया।

इस प्रकार के क्रान्तिकारी सिद्धांतों के आगमन तथा पूर्व की भौतिकी के सिद्धांतों पर प्रश्न चिह्न लगने से भौतिकी के सुदृढ़ गढ़ में भी दरारें पड़ गईं। इस परिवर्तन के रहते भी, अन्य ज्ञान क्षेत्रों की तुलना में भौतिकी का दर्जा निश्चित ज्ञान की दृष्टि से अभी भी अक्षुण्ण है। इसके विपरीत जिन क्षेत्रों को सामाजिक विज्ञान में रखते हैं - समाज विज्ञान, अर्थ विज्ञान, इतिहास आदि, उनसे निश्चयपरक परिणाम कम मिलते हैं तथा सिद्धांत तंत्रों के बीच एक सतत बहस बनी रहती है । इसका एक आधारभूत कारण यह है कि ये सभी विज्ञान अथवा अनुशासन 'मानव' को विषय बनाते हैं तथा 'मानव' के स्वभाव अथवा प्रकृति के विषय में कोई एक मत प्राप्त नहीं होता।

मानविकी के क्षेत्र में, जिसमें साहित्य, दर्शन आदि को रखा जाता है, स्थिति नितांत भिन्न है। इन क्षेत्रों में औचित्य तथा अनुशंसा के मानक, स्वरूप की दृष्टि से न केवल भिन्न हैं, अपितु उनकी मानकता भी सतत बहस का विषय बनी रहती है। ज्ञान के इन क्षेत्रों के अतिरिक्त कलाओं का स्थान आता है जो शिक्षण, प्रशिक्षण का विषय रही हैं। उनमें चिन्तन के स्थान पर कौशल प्रमुख होता है। इनमें तथा उन विषयों में जिनका व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक पक्ष होता है कुछ समानता होती है, परन्तु प्रमुख भेद यह होता है कि कला की उपलब्धियां अनिवार्यतया उपयोगी हों ऐसा नहीं होता। 'उपयोग' में न आने से यहां यह आशय है कि कलाकृतियों को हम उसी प्रकार से काम में नहीं लेते जैसे किसी अन्य उपकरण अथवा साधन का उपयोग करते हैं। परन्तु वे हमारे परिवेश को अधिक आकर्षक बनाती हैं। उनसे जीवन में सरसता उत्पन्न होती है। और भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि वे अभिव्यक्ति में रचनात्मकता को प्रकट करती हैं जिसके बिना व्यक्तित्व का एक मूल्यवान पक्ष उपेक्षित रह जाएगा। कला की विभिन्न विधाओं में सूक्ष्म और महत्त्वपूर्ण भेद हैं, परन्तु उन पर विचार करने का यहां अवकाश नहीं है। इसके विपरीत कला से इतर व्यावहारिक क्षेत्र जिनमें से कुछ को प्रौद्योगिकी में लिया जा सकता है, उद्देश्यपरक ही होते हैं। विज्ञान का क्षेत्र दो पक्ष रखता है - सैद्धांतिक तथा प्रयोगात्मक। इन दोनों का परस्पर घना संबंध है। विशेष बात यह है कि प्रयोगात्मक ज्ञान प्राप्त ज्ञान के सत्यापन में बड़ी भूमिका रखता है। दूसरी बात यह है कि यह ज्ञान प्रौद्योगिकी का आधार है। प्रौद्योगिकी की प्रगति ने वैज्ञानिक ज्ञान को बड़ी प्रतिष्ठा प्रदान की है तथा मनुष्य की जीवन शैली तथा सभ्यता-संस्कृति के स्वरूप पर व्यापक एवं गुणात्मक प्रभाव छोड़ा है। प्रकृति विज्ञानों से इतर विज्ञानों के ज्ञान ने व्यवहार में यह सफलता प्राप्त नहीं की है। दूसरी ओर कलाओं ने मनुष्य के संवेगात्मक पक्ष पर प्रभाव डाला है।

इस अत्यन्त संक्षिप्त तथा स्थूल रूप में व्यापक परिदृश्य से हम उस ज्ञान के विषय में कुछ अनुमान कर सकते हैं जो विद्यालयों में छात्र प्राप्त करते हैं, उसमें पृथक रूप से किन्हीं मूल्यों की, नैतिकता की अथवा परस्पर व्यवहार की व्यक्त शिक्षा का समावेश नहीं होता है। यह भी स्पष्ट है कि विज्ञान की कक्षाओं में प्रयोगशाला में कार्य के अतिरिक्त मानविकी के क्षेत्र में, यहां तक कि समाज विज्ञानों के क्षेत्र में भी, अध्ययन का कोई विशेष व्यावहारिक पक्ष नहीं होता। इन बाद के क्षेत्रों में सैद्धांतिक अध्ययन प्रमुख होता है, तथा अनेक तथ्यों को अथवा तथ्यात्मक सामग्री को स्मरण रखना भी आवश्यक होता है। क्योंकि सैद्धांतिक अध्ययन में विश्लेषण तथा तर्क की प्रधानता होती है तथा उत्तरोत्तर अध्ययन की दिशा सूक्ष्म विचारों की ओर अग्रसर होती, और इसलिए एक बड़े अंश में जो कुछ कक्षा में होता है, वह जीवन से तात्कालिक रूप में असम्बद्ध जान पड़ता है।

इस निरूपण में यह जोड़ने की आवश्यकता और है कि

क्षेत्रीय साहित्य के अध्ययन को छोड़कर शेष विषयों में अध्ययन सामग्री का एक बड़ा अंश अंग्रेजी के माध्यम से तथा एंग्लो-अमरीकी विचारकों की चिन्तना से लिया गया होता है। ऐसा लगता है कि यह पक्ष भारतीय शैक्षणिक संस्थाओं में संप्रेषित ज्ञान को, सामान्य जन के बोध में, और भी अप्रासंगिक बनाता है। इस स्थिति में कुछ बदलाव तो आ रहा है, परन्तु विदेशी सामग्री की पूर्णतया अवेहलना अब असंभव है। प्रथम तो ज्ञान का स्वरूप ही क्षेत्रीय अथवा आंचलिक नहीं होता - सत्य अथवा वास्तविकता का अनुसंधान एक सार्वभौमिक व्यापार है। दूसरी बात यह है कि अब जो भी शैक्षिक शोध या चिन्तन होगा उसमें विश्व के किसी भी क्षेत्र में आने वाली ज्ञान सामग्री का बोध एवं उपयोग अपरिहार्य अंग के रूप में उपस्थित होगा। यह बात आज की प्रौद्योगिकी स्थिति को - इलैक्ट्रॉनिक मीडिया को, ध्यान में लाते ही, स्पष्ट हो जाती है। यहां एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी ध्यान में रखना होगा कि देश की, संस्कृति की अस्मिता के उभरते हुए बोध के कारण हमारा सोच प्रतिक्रियावादी न हो जाए। यह वृत्ति सत्यशोधन में एक बाधा का रूप रखती है। इससे बचना आवश्यक है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पाठ्यसामग्री तथा उसके संप्रेषण को लेकर जो सामान्य असन्तोष है उसका एक कारण तो उस सामग्री तथा जीवन की आवश्यकताओं के बीच के संबंध में अस्पष्टता है, तथा दूसरी ओर शिक्षार्थी के व्यवहार में मर्यादा का अभाव है। परन्तु आश्चर्य तब होता है जब इस प्रकार का असंतोष वे लोग भी व्यक्त करते हैं जिनका अपना शैक्षिक स्तर सामान्य से अधिक ऊपर होता है। यद्यपि इस समस्या पर बहुत चर्चा होती रही है तथा विचार होता रहा है कि शिक्षा में मूल्यों का, चरित्र निर्माण का अंश कैसे लाया जाए, जीवन के लिए उसे कैसे प्रसांगिक बनाया जाए, समस्या के समाधान के सुझावों को सही दिशा प्राप्त नहीं हुई है। मूल्यों, आदर्शों, नैतिकता, आदि को पाठ्यसामग्री का अंग बनाना उनके प्रति उदासीनता विकसित करना है। यह सारी बात तब और भी अस्पष्ट तथा हवाई हो जाती है जब विद्यार्थियों की उत्तरोत्तर क्रमिकता को ध्यान में रखे बिना मूल्यों के अभाव की बात होती है। छोटी कक्षाओं में जो पाठ्यसामग्री विज्ञान से इतर रूप में अध्ययन का विषय होती है उसमें अनेक नीति कथाओं तथा नीति कविताओं का समावेश रहता है। साहित्य के क्षेत्र में मूल्यों की बात अनिवार्यतया निहित होती है। दर्शन में नीतिशास्त्र जैसा एक स्वतंत्र अध्ययन क्षेत्र होता है जिसमें समग्र अध्ययन नैतिकता के विषय में ही होता है। इतिहास तथा राजनीतिशास्त्र में भी इस प्रकार के अध्ययन का पर्याप्त अवकाश होता है। न्यूनाधिक रूप में, सभी विषयों में मूल्यबोध संबंधी घटक उपलब्ध होते हैं। विज्ञान में भी जब वैज्ञानिक पद्धति के स्वरूप को समझने का प्रयास किया जाता है, तथा सामान्य सोच से अलग वैज्ञानिक सोच को विशिष्ट रूप से समझने की कोशिश होती है, तब कुछ अनुशासनपरक तत्वों की बात मुखर होती है। पूर्वाग्रहों से मुक्त रहना, वस्तुओं तथा घटनाओं का वस्तुगत निरीक्षण उनकी तटस्थ व्याख्या एवं समीक्षा, व्यवस्थित चिंतन प्रणाली, ऐसी बातें हैं। जिनके संबंध में अनुसंधानकर्ता के चरित्रगत अनुशासन की अपेक्षा है। अपरोक्ष रूप में मूल्य संबंधी सामग्री को पाठ्यसामग्री में अलग से लाने की बात बहुधा होती है, और विद्यालयों में इस प्रकार की सामग्री का समावेश पाठ्यसामग्री के रूप में हुआ भी है। ऐसी सामग्री में कुछ नैतिक आदेशों तथा विभिन्न धर्मों की जानकारी को शामिल किया जाता है। परन्तु इस प्रकार का प्रयास न ही आवश्यक है और न ही उपादेय। पहली बात तो यह है कि अध्ययन अध्यापन का जो रूप चलन में है, उसमें छात्रा/छात्र पाठ्यसामग्री को याद करने की सामग्री मानते हैं, परीक्षा देने के बाद वे स्वयं को उससे असंबद्ध कर लेते हैं। यह एक सामान्य स्थिति है, इसके अपवाद होते हैं, यह अस्वीकार नहीं किया जा रहा है। पाठ्यसामग्री के रूप में नैतिक घटक भी उदासीनता का विषय हो जाएगा और यदि ऐसा होता है, तब उसका प्रयोजन ही पूरा नहीं होता। इसके स्थान पर जो नैतिक घटक सामान्य विषयों में प्रसंग से आ जाते हैं, उनकी ओर कक्षा में विशेष रूप में रोचक रीति से छात्रों का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। वस्तुत: चरित्र संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति पाठ्यसामग्री के स्थान पर शिक्षकों के बीच में सौहार्द्र, शिक्षक तथा शिक्षार्थियों के बीच उपयुक्त मर्यादित व्यवहार, शिक्षक की उसके अपने चरित्र की भूमिका तथा शिक्षालय के व्यवस्था तन्त्र की पारदर्शिका तथा सुचारुता से कहीं अधिक रूप में संभव है। खेद का विषय है कि विद्यालय को उपयुक्त परिवेश देने में इन बाद के घटकों में ही कमी रह जाती है।

इसका अर्थ यह हुआ कि चरित्र तथा व्यवहार तथा कौशल की दृष्टि से पाठ्यसामग्री में बहुत रद्दोबदल की आवश्यकता नहीं है। विद्यालय का परिवेश तथा शिक्षक की उपयुक्त भूमिका चरित्र के संबंध में प्रभावी हो सकती है। अभिभावकों, माता-पिता तथा अन्य उन सभी को जिन्हें शिक्षण में दोष लगता है, शिक्षण के माध्यम से जो ज्ञान संप्रेषित किया जाता है, उसके स्वरूप को समझना चाहिए।

शिक्षण सामग्री में ज्ञान तथा जानकारी दोनों की आवश्यकता है। कहीं कहीं तो, जैसा पहले कहा जा चुका है, इन दोनों में भेद करना दुष्कर होता है, फिर भी दोनों के बीच स्थूल रूप से भेद किया जा सकता है।

छोटी कक्षाओं में सामान्य ज्ञान के अन्तर्गत जो कुछ आता है वह सब जानकारी में रखा जा सकता है। सामान्य ज्ञान का कुछ अंश ऐसा होता है जिसे परिवर्तित करने की आवश्यकता नहीं होती

जैसे उदाहरणार्थ H_2O का अर्थ होता है पानी। परन्तु यदि राज्य के पदाधिकारियों का नाम पूछा जाए तो उसका उत्तर अस्थाई ही होता है। जानकारी कुछ ऐसी चीज है जो हमें कोश, सन्दर्भ ग्रन्थ आदि से प्राप्त होती है। कोश में शब्दों के अर्थ दिए होते हैं, जिनमें परस्पर कोई संबंध नहीं होता। इसके विपरीत ज्ञान की संज्ञा का प्रयोग तभी ठीक होता है जब हम किसी तथ्यपरक अथवा वैचारिक सामग्री को उसमें आए कथनों या वाक्यों को उनके परस्पर संबंध के रूप में ग्रहण करते हैं। यदि कहें कि जानकारी स्मृति प्रधान होती है, तथा ज्ञान में समझ एवं समीक्षा प्रमुख होते हैं, तो जानकारी तथा ज्ञान का भेद स्पष्ट हो जाता है। परन्तु इस भेद को सन्दर्भाधीन ही देखना उचित होगा।

शैक्षणिक पद्धति तथा पाठ्यसामग्री को लेकर जो असन्तोष व्यक्त किया जाता है, उसे एक अन्य स्रोत से भी बल मिलता है। वह स्रोत सांसारिकता एवं आधुनिक सभ्यता के प्रति आध्यात्मिक दृष्टि की प्रतिक्रिया हैं। टी. एस. इलियट. अंग्रेजी साहित्य के एक प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। उनकी कुछ पंक्तियां इस संदर्भ में बहुधा उद्धृत की जाती हैं।

''कहां है प्रज्ञा जो हमने ज्ञान में खोई ? कहां है ज्ञान जो हमने जानकारी में खोया ?'' ये पंक्तियां उनकी एक कविता 'द रॉक' (चट्टान) से ली गई हैं। इलियट का इन पंक्तियों से क्या आशय था यह एक रोचक अनुसंधान का विषय हो सकता है। वर्तमान प्रसंग में इन पंक्तियों से ध्वनित बोध के विभिन्न स्तरों पर एक नजर डालना उपयुक्त होगा। जानकारी, ज्ञान तथा प्रज्ञा में प्रदत्त (डेटा) को जोड़कर बोध के क्रमिक स्तरों का उल्लेख निखिल शर्मा के अनुसार, जैलेनि ने अपने किसी लेख में 1987 में किया था।

वस्तुत: बोध के इन स्तरों की बात हमें भारतीय वांगमय में शताब्दियों पूर्व प्राप्त होती है। ईशावास्योपनिषद में एक बड़ी अजीब बात कही गई है। 'अविद्या तो अंधकार में रखती है, विद्या और घने अंधकार में रखती है।' विद्या और घने अंधकार में ले जाए, इसका क्या अर्थ हो सकता है ? कदाचित विद्या की प्राप्ति विद्वान में अहंकार उत्पन्न करती है; अथवा जिन विषयों को वह उद्भाषित करती है वे विशेष महत्त्व के नहीं होते; अथवा इन सब के विपरीत विद्या ज्ञान के अथाह सागर का संकेत देते हुए अज्ञान का गहरा बोध कराती हो ? मुण्डकोपनिषद में पराविद्या तथा अपराविद्या का भेद बताया गया है। अपरा विद्या में वेद तथा वेदांगों को लिया गया है और परा विद्या में ब्रह्मज्ञान को और इसी प्रकार की परा विद्या को ब्रह्माविद्या भी कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपराविद्या को लौकिक ज्ञान माना जा रहा है, तथा परा विद्या को अलौकिक ज्ञान समझा जा रहा है। परा विद्या की तुलना में अपराविद्या को हेय समझा गया है। वास्तविक विद्या अथवा वास्तविक ज्ञान तत्व का अथवा ब्रह्मा का ज्ञान ही होता है। 'ईशावास्योपनिषद' में विद्या अविद्या के विषय में बता कर यह कहा गया है कि जो यह जानता है कि अविद्या अंधकार में रखती है, तथा विद्या और घने अंधकार में ले जाती है, वही जानता है।

स्पष्ट है कि अविद्या, विद्या तथा ब्रह्म विद्या के विषय में औपनिषदिक दृष्टि तुलनात्मक सन्दर्भ रखती है तथा ब्रह्मा विद्या को सर्वश्रेष्ठ मानती है।

यहां यह प्रश्न उठता है कि विभिन्न विद्याएँ स्तर भेद रखती हैं, या यह कि उनके बीच भेद अनुल्लंघनीय है। गीता के सातवें अध्याय में दो प्रकार के विषयों में भेद किया गया है। प्रकृति जिसके आठ भेद हैं, यथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश एवं मन, बुद्धि और अहंकार। इन्हें अपरा कहा गया है। परन्तु कृष्ण इनके विषय में कहते हैं कि वे उनकी जड़ प्रकृति के द्योतक है। इसके विपरीत चेतन प्रकृति उनकी परा प्रकृति है। जगत की समस्त सत्ताएं इन दोनों प्रकृतियों से उत्पन्न होती है। पश्चिम में अरस्तु ने माना था कि जगत के समस्त अस्तित्वमान विषय जड़ एवं आकार (मैटर तथा फॉर्म) के मिश्रित रूप है। निखिल शर्मा के लेख को उनकी वैबसाइट-personal.si.umich.edu/~nsharma/dikw_origin.htm पर देखा जा सकता है। जैलेनि प्रदत्त, जानकारी, ज्ञान तथा प्रज्ञा को क्रमश: 'नहीं जानना', 'क्या कुछ जानना' 'कैसे जानना, तथा 'क्यों जानना' के रूप में देखते हैं। कह सकते हैं कि मात्र प्रदत्त प्राप्त करना जानना नहीं होता। जानकारी का अर्थ है, हम जानते हैं कि विषय क्या है। ज्ञान के स्तर पर जानने का अर्थ है कि हम यह जानते हैं कि जो होता है वह कैसे होता है। और प्रज्ञा का मतलब है कि हमें यह बोध होता है कि जो है या होता है वह क्यों है या क्यों होता है।

इलियट तथा जैलेनि के विचार हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं कि जानना अनेक प्रकार से हो सकता है। ध्यान देने पर वह स्पष्ट होगा कि जीवन में इन सभी प्रकारों का अपना महत्त्व है। बिना प्रदत्तों के जानने की बात आरंभ ही नहीं होती। परन्तु केवल प्रदत्तों के स्तर पर रहते हुए जानना संभव नहीं होता। जानकारी हमें अनेक विषयों के विषय में बोध कराती है। जब विभिन्न विषयों के संबंध जिन में कार्य कारण का संबंध प्रमुख होता है, स्पष्ट हो जाते हैं तभी हमें ज्ञान होता है। यह ज्ञान जीवन के लिए कितना आवश्यक है, यह स्पष्ट है। जीवन को दिशा देने में क्यों की विशेष भूमिका है। जो भी हम करते हैं, वह क्यों ? जो कुछ भी है, अथवा होता है, वह क्यों ? इन प्रश्नों के उत्तर जीवन की सार्थकता की दिशा की ओर इशारा करते हैं।

'कैसे' और 'क्यों' की जिज्ञासाएं तथा उनके समाधान दो ऐसे

क्षेत्रों को इंगित करते है, जो एक दूसरे से अलग जान पड़ते हैं। आधुनिक सन्दर्भ में उन्हें क्रमश: तथ्यों तथा मूल्यों का आदर्शों के क्षेत्र कह सकते हैं।

परा तथा अपरा विषयों का यह गहरा संबंध, परा तथा अपरा ज्ञान के भेद को आत्यान्तिक नहीं रहने देता। जैसे अध्याय के आरंभ में (श्लोक -2 में) ही कहा गया है, तत्व ज्ञान का हो जाना फिर किसी अन्य ज्ञान की अपेक्षा नहीं रखता।

उपनिषदों में परा विद्या के बिना, केवल अपरा विद्या का ज्ञान अपूर्ण माना गया है। परन्तु दोनों के विषयों में अनुल्लंघनीय भेद है। वस्तुत: दोनों के जो विषय हैं वे प्राकृत: इतने भिन्न हैं कि उन्हें एक ही प्रकार से जाना भी नहीं जा सकता। अपरा विद्या के विषय विषयी अथवा ज्ञाता से भिन्न होते हैं, परन्तु परा विद्या का विषय स्वयं विषयी होता है, तथा वह विषय रूप में नहीं जाना जा सकता।

स्तर भेद के विषय में पश्चिम में भी दो प्रकार के मत मिलते हैं, परन्तु वे भारतीय मनीषियों के द्वारा किए गए भेद से भिन्न हैं। हां, एक ओर तो ऐन्द्रिक या आनुभविक ज्ञान तथा बौद्धिक ज्ञान में भेद को लेकर प्रकारगत भेद और क्रमगत भेद को मानने वालों के बीच बहस रही है तो दूसरी ओर सामान्य लौकिक ज्ञान (कॉमन सेंस) तथा विज्ञान के ज्ञान के बीच भेद ने भी ऐसे ही विवाद को जन्म दिया है।

ऐन्द्रिक या आनुभाविक तथा बौद्धिक के बीच प्रकारगत भेद को कान्ट की ज्ञान मीमांसा में देखा जा सकता है। वस्तुत: कान्ट ज्ञान के आनुभाविक रूप को केवल इन्द्रियजन्य ही नहीं मानते। बिना बुद्धि के योगदान के ऐन्द्रिक ज्ञान अथवा ज्ञान संभव नहीं होता। कदाचित यहां 'ऐन्द्रिक ज्ञान' शब्दों का प्रयोग उपयुक्त नहीं है। जिस ज्ञान की बात कान्ट करते हैं वह जगत के विषयों से संबंधित होने के कारण एन्द्रिक कहा जा सकता है, तथा उसके अर्न्तगत वह समस्त ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में आता है जैसे भौतिकी आदि का ज्ञान।

इसी प्रकार बौद्धिक ज्ञान शब्दों का प्रयोग भी भ्रामक है। क्योंकि कान्ट यह मानते हैं कि बुद्धि, ज्ञान में योगदान के रूप में आकार तो प्रदान करती है परन्तु वह स्वयं ज्ञान की विषयवस्तु को उत्पन्न नहीं करती इसलिए केवल बुद्धि के स्तर पर ज्ञान संभव नहीं है। कान्ट के विषय में यह निरूपण एक विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखता है, परन्तु वर्तमान प्रसंग में इतना ही पर्याप्त है।

बाद में हेगेल ने आनुभविक ज्ञान को बौद्धिक ज्ञान के पूर्व सोपान के रूप में देखा । और इस प्रकार दोनों के बीच केवल क्रम या श्रेणी का भेद माना। अन्य शब्दों में ज्ञान के रूप में दोनों एक ही प्रक्रिया के अंग हैं। बात चाहे कान्ट की हो अथवा हेगेल की दोनों संदर्भों में जो दर्जा परा विद्या को भारतीय संदर्भ में प्राप्त है, वह बौद्धिक ज्ञान को पश्चिम में नहीं दिया गया है। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि कान्ट अथवा हेगेल विषयी या ज्ञाता के आत्मज्ञान की बात नहीं करते अथवा उसे महत्त्व नहीं देते।

सामान्य या साधारण ज्ञान तथा विज्ञान के अथवा शास्त्र के ज्ञान में जो भेद है क्या वह केवल परिमाण का है अथवा वह गुणगत या प्रकारगत है ? विज्ञान अथवा शास्त्र किसी भी देश में जनसंख्या के एक न्यूनांश ही से जुड़ा होता है। जनसंख्या का वृहतांश केवल साधारण अथवा सामान्य ज्ञान से जुड़ा होता है। अधिकतर लोग साधारण अनुभव और सूझबूझ से ही काम चलाते हैं। कुछ विशिष्ट लोग शास्त्र तथा विज्ञान के ज्ञान की बारीकियों में व्यस्त होते हैं। साधारण ज्ञान को विज्ञान के ज्ञान की भांति क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित नहीं माना जाता। साधारण ज्ञान तथा विज्ञान अथवा शास्त्र के ज्ञान में इस प्रकार का भेद होते हुए भी यह सोचना ठीक नहीं होगा कि जो शास्त्र अथवा विज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत हैं वे साधारण ज्ञान का उपयोग नहीं करते। वस्तुत: हमारे जीवन का बड़ा भाग साधारण ज्ञान द्वारा ही संचालित होता है । कभी-कभी शास्त्रीय ज्ञान तथा साधारण ज्ञान में विरोध होता है तो कभी भी विज्ञान से साधारण ज्ञान की पुष्टि भी होती है।

इस प्रकार साधारण ज्ञान की जांच और परीक्षा, उसमें किसी अंश का त्याग तथा किसी का वरण एवं विभिन्न जानकारियों को एक सूत्र में बांधने के प्रयास उसे शास्त्रीय अथवा विज्ञान के ज्ञान के निकट ले आते हैं, क्योंकि ये प्रक्रिया वस्तुत: शास्त्रीय अथवा वैज्ञानिक प्रक्रिया ही हैं। ऐसी अवस्था में साधारण ज्ञान तथा विज्ञान/शास्त्र के ज्ञान के बीच भेद को पारिभाषिक न मानकर सकारात्मक मानना समीचीन होगा। सामान्य रूप से कोई भी व्यक्ति हो वह ज्ञान के बीच विभिन्न स्तरों पर जीता है तथा उसके विभिन्न प्रकारों को व्यवहार में प्रयुक्त करता है। इस दृष्टि से उसके जीवन में उस ज्ञान की भी न्यूनाधिक भूमिका होती है जिसे न तो साधारण और न ही वैज्ञानिक कहा जा सकता है और जो उसे अपने अनुभव से किसी भिन्न क्षेत्र से जोड़ता है । इस पक्ष को निषेधात्मक तथा विध्यात्मक दोनों दृष्टियों से देखा जा सकता है। इस क्षेत्र को श्रद्धा या विश्वास के क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। इस क्षेत्र का नैतिकता से अथवा पुरूषार्थो से क्या संबंध है इस प्रश्न का उत्तर विध्यात्मक रूप में तथा निषेधात्मक रूप में - दोनों ही तरह से मिलता है। कुछ लोग मानते हैं कि बिना आध्यात्म अथवा आस्तिकता के व्यक्ति में नैतिक चरित्र की उपस्थिति तथा विकास नहीं हो सकता तथा कुछ दूसरे मानते हैं कि नैतिक बोध एवं नैतिक चरित्र का आध्यात्म अथवा आस्तिकता से कुछ लेना देना नहीं है। यह विवाद ज्ञान के स्वरूप से जुड़ा है।

धार्मिकता के साथ कभी-कभी कट्टरता का जुड़ाव हो जाता है, जिसके कारण उदारता, सहिष्णुता में कमी तथा क्रूरता में वृद्धि होती है। इन गुणों को नैतिक चरित्र के साथ जोड़ना ठीक नहीं लगता। दूसरी ओर औदार्य, सहिष्णुता तथा मिलनसारिता जो नैतिकता के निकट मानी जाती हैं, आस्तिकता का परिणाम हो, अथवा उससे अनिवार्य रूप से जुड़ी हो, यह भी देखने में नहीं आता।

ज्ञान विषय प्रधान होता है, और आस्तिकता के विषय साधारण अर्थ में 'विषय' नहीं होते, फलत: उनके ज्ञान की बात समस्या मूलक ठहरती है, और इस स्थिति में बहुधा ज्ञान की बात ही नहीं की जाती। ज्ञान के स्थान पर विश्वास और श्रद्धा की बात होती है। नैतिक चरित्र तथा मूल्यों को भी साधारण अर्थ में विषय नहीं माना जाता। उसका एक प्रमुख कारण यह माना जाता है कि नैतिक चरित्र तथा मूल्य आदर्श का स्थान रखते हैं। और आदर्श वह होता है जो कार्य का लक्ष्य या साध्य होता है। लक्ष्य अथवा साध्य अन्य विषयों के भांति वर्तमान नहीं होते, उनका संबंध भविष्य से होता है। साधारण अर्थ में विषय नहीं होने के कारण, कुछ दार्शनिक कर्म एवं नैतिकता को ज्ञान का क्षेत्र नहीं मानते।

शंकराचार्य ने कर्म तथा ज्ञान में आत्यान्तिक भेद मानते हुए केवल ज्ञान को ही परमलक्ष्य की प्राप्ति का साधन माना है।

दूसरी ओर कान्ट ने विषय के साधारण अर्थ को ध्यान में रखते हुए कर्म तथा ज्ञान के क्षेत्रों में अन्तर किया है।

मूल्य आदर्श विषय रूप में वर्तमान नहीं हों, तो भी उनके विषय में सार्थक चर्चा संभव है। उनको लेकर तर्कपूर्ण विचार विमर्श होता है, और इस रूप से उन्हें ज्ञान की संज्ञा देना गलत नहीं। जिस प्रकार विषयी या ज्ञाता का ज्ञान विषय ज्ञान से भिन्न होते हुए भी ज्ञान कहा जाता है उसी प्रकार मूल्यों तथा आदर्शों के क्षेत्र को भी ज्ञान के अन्तर्गत रख सकते हैं। इस अवस्था में हमारे सम्मुख दो विकल्प हैं या तो ज्ञान शब्द का प्रयोग सन्दर्भाधीन मानकर उसके विभिन्न प्रकार माने जाएं, या फिर ज्ञान शब्द का प्रयोग केवल विषय ज्ञान तक सीमित रखकर अन्य सन्दर्भों में ज्ञान के स्थान पर कोई और पद प्रयुक्त हो जैसे आस्तिकता अथवा अध्यात्म के क्षेत्र को कुछ लोग श्रद्धा तथा विश्वास को क्षेत्र कहेंगे।

कठिनाई तब उत्पन्न होती है जब श्रद्धा तथा विश्वास की बात करते हुए तथा बुद्धि तथा ऐहिक अनुभव की सीमा बताते हुए भी, अतीन्द्रिय विषयों अथवा विचारों को लेकर वापस उसी क्षेत्र में चर्चा चल पड़ती है जिसका बहिष्कार कर दिया गया है।

जिस सन्दर्भ में जानकारी तथा ज्ञान के भेद को लेकर यह विमर्श आरम्भ हुआ है, उसकी ओर वापस आने पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि शैक्षिक प्रणाली एवं पाठ्यक्रम में 'ज्ञान'को लेकर अब क्या कहा जा सकता है। एक बात यह स्पष्ट प्रतीत होती है कि पाठ्यसामग्री में जानकारी तथा ज्ञान दोनों को अनिवार्य भूमिका है। ऐसी अवस्था में यह शिकायत कि जानकारी दी जाती है ज्ञान नहीं, उपयुक्त नहीं है। जहां बात जानकारी अथवा ज्ञान की न होकर मर्यादित व्यवहार, मूल्य बोध तथा कौशल और सूझबूझ की है, इन्हें शिक्षा प्रणाली में परोक्ष रूप में समायोजित किया जाना चाहिए।

उदाहरण के लिए इतिहास के अध्यापन को लें। तथ्यों तथा तिथियों के विषयों में जो सम्प्रेषण होगा वह जानकारी के रूप में होगा। तिथियां तथा तथ्य दोनों ही स्मृति का विषय होंगे और परस्पर अलग-अलग होंगे। केवल अपने अलग-अलग रूप में इनका महत्त्व नहीं होगा। परन्तु जब उन्हें घटनाक्रम तथा घटना के महत्त्व के सन्दर्भ में रखा जाएगा तब वे ज्ञान का रूप ले लेंगे एवं केवल स्मृति का अभ्यास नहीं रह जाएगा।

इतिहास का अध्यापन ज्ञान के स्वरूप के विषय में एक गंभीर समस्या की ओर संकेत करता है। समझा जाता है कि ज्ञान एक स्थिर, सुनिश्चित तथा विश्वसनीय भण्डार है जहां से व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार सामग्री ले सकता है। परन्तु अब ज्ञान की यह तस्वीर ठीक नहीं बैठती। यद्यपि, अभी भी, अध्ययन अध्यापन इस तस्वीर को ठीक मानकर ही होता है। किसी भी विषय के ज्ञान के क्षेत्र को लें, देखने में आता है कि उनमें मौलिक परिवर्तन होता रहता है। गणित के विषय में कभी ऐसा समझा जाता था कि जो कुछ युक्लिड ने लिख दिया वह अक्षुण्ण है। परन्तु जैसा सर्वविदित है यह धारणा आगे चल कर बदल गई जब यूक्लिड के सिस्टम से भिन्न ज्यामितियां विकसित हुईं। न्यूटन की भौतिकी के बाद आइन्सटाइन की भौतिकी ने भौतिकी में नए रास्ते खोले। इन प्रतिष्ठित क्षेत्रों की तुलना में समाज विज्ञान तथा मानविकी तो सदैव विवादों से परिपूर्ण रहे हैं। विशेषकर वे सभी ज्ञान क्षेत्र जिनका विषय किसी न किसी रूप में मनुष्य रहा है, ऐसे निष्कर्षों से अभी भी दूर है जिन्हें बिना किसी अपवाद के सुनिश्चित रूप से माना जा सके। इतिहास में स्थिति इसलिए गंभीर है कि इस क्षेत्र में जो निष्कर्ष प्राप्त किए जाते हैं, वे अपर्याप्त साक्ष्यों तथा साक्ष्यों की अर्थ व्याख्या पर आश्रित होते हैं। फिर भी उन्हें निरपेक्ष तथ्यों के रूप में प्रेषित किया जाता है। इस विवेचन का एक निहितार्थ यह है कि जिसे जानकारी कहा जाता है - अर्थात् सुनिश्चित तथ्य, वह भ्रामक तथा मिथ्या हो सकता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए तथाकथित जानकारी एवं ज्ञान के संप्रेषण में यह बोध शामिल होना चाहिए कि जो कुछ जानकारी तथा ज्ञान के रूप में प्रेष्य है वह पूर्णतया सुनिश्चित नहीं होता, उसमें परिवर्तन भी हो सकता है। ◆